इकाई 1 कृषि और आर्थिक वृद्धि

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कृषि विकास के लिए शर्तें : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

1.2.1 द्वि-क्षेत्रक अर्थव्यवस्था प्रतिमान : लुईस का तर्क

1.2.2 औद्योगिकीकरण से त्रि-प्रावस्था संबंधन : फाई और रेनिस

1.2.3 सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें : शूल्त्ज–जॉर्गेनसन

1.2.4 पहले कृषि बनाम संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण

1.3 कृषि विकास के निर्धारक तत्त्व

1.4 कृषि विकास नीतियाँ

1.4.1 कृषि विकास नीति के लक्ष्य

1.4.2 कृषि विकास नीतियों का वर्गीकरण

1.5 कृषि विकास : औद्योगिकीकरण की प्रस्तावना

1.5.1 आर्थिक वृद्धि के लिए कृषि का योगदान

1.5.2 उद्योग पर कृषि की निर्भरता

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि प्रगति और आर्थिक विकास के बीच संबंध स्पष्ट कर सकेंगे;
- समग्र आर्थिक वृद्धि से कृषि प्रगति को जोड़ने वाली कुछ सैद्धांतिक पूर्वधारणाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- कृषि विकास के निर्धारण तत्त्वों की पहचान कर सकेंगे;
- कृषि विकास के लिए आर्थिक नीतियों का महत्त्व समझ सकेंगे; और
- खासतौर पर कृषि विकास और सामान्य रूप में समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था में आजीविका का मुख्य स्रोत रहा है। पिछले छह दशकों के दौरान

अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय विवरण में बड़े संरचनात्मक परिवर्तनों के बावजूद भारत में श्रमिक बल के बहुत बड़े भाग की आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि रहा है। इसलिए कृषि को देश की समग्र नीति में महत्त्वपूर्ण सेक्टर माना जाता रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि द्वारा उत्पन्न किए गए प्रत्येक अतिरिक्त रुपए में ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक कार्यों से आय में तीन अन्य अतिरिक्त रुपए जुड़ते हैं। इसके अलावा, शहरी अर्थव्यवस्था (जैसे उद्योग, परिवर्तन, बैंकिंग आदि) के बहुत से द्वितीयक और तृतीयक सेक्टरों को इसके गुणक प्रभावित करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के कुल GDP में कृषि सेक्टर के सापेक्ष महत्त्व में पिछले छह दशकों में स्पष्ट गिरावट दिखाई है। अर्थव्यवस्था दोहरे अंकों में संवृद्धि के लिए कृषि में न्यूनतम की संवृद्धि अत्यावश्यक मानी जा रही है। यदि ऐसा है तो हमें कृषि विकास के लिए आवश्यक शर्तें जानना उचित होना। इसके उत्तर के लिए हम कुछ महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक पूर्वधारणाओं पर चर्चा करेंगे।

1.2 कृषि विकास के लिए शर्तें : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका फिजियोक्रेट्स या प्रकृतितंत्रवादी (अर्थात् अंग्रेज क्लासिकी आर्थिक सिद्धांतवादियों से पहले फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों के वर्ग) के समय से ही स्वीकार की गई है। फिजियोक्रेट्स के अनुसार यह केवल कृषि सेक्टर था जिसने उत्पादन लागत से अधिक आर्थिक अधिशेष उत्पादित किया। वे इस दृष्टि से विनिर्माण और वाणिज्य को अनुत्पादनकारी समझते थे कि इन सेक्टरों द्वारा प्रयुक्त कच्चे माल के मूल्य में वृद्धि उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयुक्त श्रम और पूँजी का भुगतान करने के लिए ही पर्याप्त है। इस दृष्टि से फिजियोक्रेट्स ने कृषि को आर्थिक विकास में सबसे अधिक महत्त्वशाली समझा।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध के दौरान प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी आर्थिक विकास में कृषि का महत्त्व स्वीकार किया किंतु उसकी वृद्धि को उन्होंने उद्योग की वृद्धि से यथाविधि जोड़कर ही देखा। उदाहरण के लिए, एडम स्मिथ के बुनियादी संवृद्धि प्रतिमान ने समग्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक गैर-कृषि उत्पादन की सहायता करने के लिए कृषि अधिशेष के उत्पादन पर विचार किया। सामान्यतः इन अर्थशात्रियों का रोचक तर्क परिसंचरण (circularity) की अवधारणा थी जिसमें ''प्रौद्योगिकी, निवेश और लाभ'' के बीच अंतःसंबंध की विशेषता बताई गई थी। इसका अभिप्राय है कि प्रौद्योगिकी का स्तर निवेश के स्तर पर निर्भर करता है, निवेश लाभ पर निर्भर करता है और लाभ आंशिक रूप से प्रौद्योगिकी के स्तर पर निर्भर करता है। इसलिए चिर प्रतिष्ठित अर्थशात्रियों ने स्वतः कृषि विकास पर ध्यान केंद्रित नहीं किया। परन्तु उन्होंने आर्थिक वृद्धि को कृषि के विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से आश्रित माना, क्योंकि, आर्थिक संक्रमण काल की प्रारंभिक अवस्था में अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ (विशेष कर कृषि से विकसित हो रही अर्थव्यवस्थाएँ) अपने अधिकांश श्रमिक बल के भरण पोषण के लिए कृषि पर निर्भर होंगी। कोई भी कल्पना कर सकता है कि आधुनिक समय में भी जब बहुत से देशों में खाद्य सामग्री के लिए दंगे देखे गए हैं, विश्वव्यापी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वहां पर्याप्त उत्पादन करने के संबंध में कृषि का महत्त्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए, [वास्तव में उत्पादन कहीं भी हो]। विकास के क्लासिकी सिद्धांतों ने वृद्धि और विकास के बीच स्पष्ट अंतर नहीं किया परन्तु माना है कि विकास अपनी स्वाभाविक वृद्धि का अनुसरण करेगा। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति समय, अर्थात् 1945 के आस-पास विकास अपने आप में अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया। इस भाग में हम ऐसे चार सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे : (i) लुईस का द्वि-क्षेत्रक (दो सेक्टर) आर्थिक प्रतिमान (1954); (ii) फाई और रेनिस द्वारा प्रतिपादित ''औद्योगिकीकरण के लिए तीन प्रावस्था संबंधन'' (1961), (iii) शूल्ट्ज–जॉर्गेनसन द्वारा रचित ''सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें'' प्रतिमान (1964), और (iv) अनेक

योगदान कर्ताओं द्वारा प्रस्तुत ''विकास युक्ति के रूप में कृषि पहलें'' या ''संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण'' जिन्होंने विकास योजना के प्रमुख भाग के रूप में सेक्टर संबंधन के पारस्परिक सहयोगशील संबंध को देखा।

1.2.1 द्वि-क्षेत्रक अर्थव्यवस्था प्रतिमान : लुईस का तर्क

डब्ल्यू आर्थर लुईस (1954) ने अपना प्रतिमान इस तर्क पर स्थापित किया कि बहुत से विकासशील देशों में कृषि सेक्टर जीवन निर्वाह करने वाला विशाल श्रम बल विद्यमान था जिसकी सीमांत उत्पादिता बहुत कम (शून्य के समीप) थी और इसलिए निर्वाह मजदूरी स्तर पर उपलब्ध अधिवेशन श्रम बल को अधिक उत्पादनकारी आधुनिक (औद्योगिक) सेक्टर में स्थानांतरित किया जा सकता था। ये स्थानांतरण कृषि सेक्टर के निर्वाह मजदूरी से किंचित अधिक मजदूरी दर पर किया जा सकता है (ताकि कृषि सेक्टर से ''पूँजीवादी सेक्टर'' में जाने का अवरोध समाप्त हो सके)। परन्तु पूँजीवादी सेक्टर को तो ''कुशल कामगारों'' की आवश्यकता होती है। किंतु इस बात को लुईस ने अस्थायी अवरोध ही माना था, क्योंकि ''अकुशल कामगारों'' को उनकी कुशलता का स्तर बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

अधिक निवेश और प्रौद्योगिकी के कारण ''पूँजीवादी सेक्टर (अर्थात् औद्योगिक सेक्टर या गैर-कृषि सेक्टर) में श्रम की सीमांत उत्पादकता कृषि सेक्टर में प्रभावी मजदूरी दर की अपेक्षा उच्चतर होगी। इसलिए यह पूँजी अधिशेष का सृजन करता है जिसे आगे पूँजी निर्माण के उच्चतर स्तरों में निवेश किया जा सकता है। बढ़ा हुआ निवेश पूँजीवादी सेक्टर में श्रम की सीमांत उत्पादकता आगे बढ़ा सकता है। आगे चलकर यह निर्वाह क्षेत्र के अधिक लोगों के लिए रोजगार के अवसर संभव बना सकता है। पूँजीवादी नियोक्ता तब तक कृषि से अतिरिक्त श्रमिकों की भर्ती करेंगे जब तक श्रम की आपूर्ति मजदूरी प्रति लोचशील हो। कुछ आलोचकों ने उल्लेख किया है कि कृषि से प्रछन्न बेरोजगारों के विलयन द्वारा विकास संबंधी लुईस का आशावाद अवास्तविक है क्योंकि कृषि उत्पाद में गिरावट के बिना बड़ी संख्या में श्रमिकों का स्थानांतरण संभव नहीं है। फिर भी, लुईस का प्रतिमान विवेकशीलता और पूर्ण प्रतिस्पर्धा की मान्यताओं पर आधारित है। इन मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए (जो विरले ही वास्तविकता में पूर्ण होती हैं, क्योंकि शासन/संस्थागत चुनौतियां उनके उल्लंघन के परिणामों को न्यूनतम करने के इर्दगिर्द केंद्रित होती हैं)। लुईस का तर्क विशाल कृषि अर्थव्यवस्थाओं के लिए लागू होता है। अन्यों द्वारा की गई क्रमिक प्राप्ति लुईस के द्वि-क्षेत्रक सिद्धांत को परिष्कृत करती है और इसे पूँजीवादी बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं की व्यावहारिताओं के अधिक अनुरूप बनाता है।

''वास्तव में, लुईस ने कल्पना की थी कि श्रम स्थानांतरण की प्रक्रिया अनिश्चित काल तक जारी नहीं रखी जा सकती और किसी न किसी समय पर समाप्त होनी चाहिए। इसलिए उसने तर्क दिया कि जब वह हो जाता है तो, अन्य श्रम अधिशेष देशों से आप्रवासन प्रोत्साहित कर, या निर्वाह मजदूरी दर पर श्रमिकों की प्रचुर आपूर्ति वाले देशों को पूँजी का निर्यात कर पूँजी निर्माण की प्रक्रिया जारी रखी जा सकती है। इस प्रकार लुईस का मॉडल सामान्यतः आर्थिक विकास की प्रक्रिया समझने के लिए अपने आप में पूरी रूपरेखा प्रदान करता है। फिर भी उसके सिद्धांत के विरुद्ध की गई तर्कसंगत आलोचनाओं में निम्नलिखित शामिल हैं : (i) श्रम स्थानांतरण की प्रक्रिया लाभ की दर और पूँजी निर्माण की दर बनाए रखने के लिए योगदानकारी कृषि मजदूरी को भी आशा से अधिक नीचे ले जाएगी; (ii) पूँजीवादी नियोक्ता अधिशेष शेष का प्रयोग विकास प्रयोजनों में उसे वापस लगाने के बदले गैर-उत्पादनकारी

कार्य में लगा सकता है, (iii) अपनी बढ़ती हुई प्रत्याशाओं को पूरा करने के लिए ग्रामीण गरीब भी अधिक खपत और कम बचत कर सकते हैं, इससे विकास की गति मंद पड़ सकती है, इत्यादि। रेनिस और फाई ने इस मॉडल में एक सुधार सुझाया था। उन्होंने ''उपेक्षित'' कृषि सेक्टर की भूमिका का पहले विश्लेषण कर अपने सिद्धांत पर गहनता से विचार किया और तब कृषि उत्पादकता में वृद्धि की संभावना प्रयोग कर स्थैतिक (States) विश्लेषण को सामान्य नियम का रूप दिया।

1.2.2 औद्योगिकीकरण से त्रि-प्रावस्था संबंधन : फाई और रेनिस

फाई और रेनिस ने कृषि से उद्योग में अधिशेष श्रमिक स्थानांतरण की तीन पृथक प्रावस्थाएं बताई हैं। पहली ''अधिशेष श्रमिकों'' के संग्रह की विद्यमानता तक रहेगी। इस प्रावस्था के दौरान कृषि से उद्योग में श्रमिकों के स्थानांतरण से कृषि उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा। दूसरी प्रावस्था में, उस अधिशेष श्रमिक संग्रह होने वाला है, लुईस का वर्तन बिंदु (संधिकाय) कहलाता है। यहां कृषि में श्रम की सीमांत उत्पादकता बढ़नी शुरू होगी। यहां कृषि से उद्योग में श्रम के स्थानांतरण के लिए सकारात्मक अवसर लागत होती है, अर्थात्, कृषि में उत्पादन में गिरावट के बिना श्रम स्थानांतरित नहीं हो सकता। परन्तु इस अवस्था में भी जब तक कृषि मजदूरी दर की अपेक्षा औद्योगिक मजदूर दर अधिक रहेगी, अर्थात् द्वि-क्षेत्रक मजदूरी दर कृषि से उद्योग में श्रमिकों का स्थानांतरण जारी रहेगा। इसका परिणाम होगा कि कृषि उत्पाद में सीमांत गिरावट के साथ अर्थव्यवस्था के उत्पाद में वृद्धि होगी। परन्तु एक स्थिति में जब कृषि श्रम का सीमांत उत्पाद औद्योगिक मजदूरी के बराबर हो जाता है (जैसे तीसरी प्रवस्था में) तो आर्थिक संवृद्धि में आगे प्रगति निम्नलिखित से संरोधित हो जाती है : (i) प्रौद्योगिकी प्रगति और (ii) उन्नत आधारभूत संरचना द्वारा अर्थव्यवस्था की समावेश क्षमता। फाई और रेनिस के विश्लेषण से मुख्य संदेश यह निकलता है कि आर्थिक रूपांतरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में कृषि समग्र आर्थिक वृद्धि को कोई क्षति पहुंचाए बिना अधिशेष श्रम मुहैया कराती है। परन्तु बाद की अवस्थाओं में ऐसा आवश्यक नहीं रहता है। यद्यपि इस स्थिति का सामना करते समय संतुलित संवृद्धि कार्यनीति (अर्थात् कृषि और उद्योग दोनों की समन्वित वृद्धि) बहुत से सिद्धांतवादियों द्वारा प्रस्तुत की गई थी परन्तु शूल्त्ज–जॉर्गेनसन ने सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तों का निरूपण किया है।

1.2.3 सेक्टर संबंधी अंतरण के लिए आवश्यक शर्तें : शूल्त्ज – जॉर्गेनसन

शूल्त्ज (1964) ने तर्क दिया था कि कृषि से कामगारों की किसी भी परिवार की निकासी का परिणाम कृषि उत्पादकता का ह्रास होकर, अर्थात् वह इस बात पर दृढ़ रहा कि कृषि में श्रम की सीमांत उत्पादकता कभी भी शून्य या ऋणात्मक नहीं होती है। परन्तु उसका दृढ़ विश्वास था यदि दो अंतर्निहित महत्त्वपूर्ण मुद्दों का उत्तर दिया जा सके तो अर्थव्यवस्था में उत्पाद का समग्र मूल्य कृषि सेक्टर में अधिशेष श्रम का उपयोग करके बढ़ाया जा सकता है : (i) वे कौन सी दशाएं हैं जिनमें कृषि से अतिरिक्त श्रम को कृषि में उत्पादन घटाए बिना स्थानांतरित किया जा सकता है ? और (ii) संभाव्य श्रम बल की क्या अपेक्षिताएं हैं ताकि यह पारस्परिक रूप से संपूरक तरीके में दोनों क्षेत्रों को लाभान्वित कर सके ? जन प्रवाह की उपार्जनकारी आयु की रूपरेखा का अध्ययन करने के लिए ''मानवपूँजी'' के विचार का प्रयोग करते हुए शूल्तज ने सिद्धांत प्रस्तुत किया है कि शिक्षा अनुभवहीन या अकुशल श्रमिक की प्रस्थिति को कुशल श्रमिक में रूपांतरित करेगी ये उन्हें बाहरी प्रतिघातों का सामना करने योग्य बनाएगी। इस बिंदु को उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए उसने विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उन किसानों

का उदाहरण दिया जिन्हें उन अनिश्चित आर्थिक दशाओं से निपटना पड़ता है जो उनकी स्वयं की बनाई हुई नहीं हैं। उसने तर्क दिया कि शिक्षा लोगों को ऐसे शोषण के न्यूनतमीकरण के आर्थिक वातावरण के संबंध में सूचना संसाधित करने के लिए अधिक सक्षम बनाती है जिसका वे शिकार हो सकते हैं। शूल्त्ज के समकालीन जार्गेनसन ने इस मुद्दे को संसाधनों के अंतः सेक्टर प्रवाह के दृष्टिकोण से देखा और उल्लेख किया कि गैर-कृषि से सेक्टर की वृद्धि धनात्मक और बढ़ते हुए ''कृषि अधिशेष'' पर निर्भर होती है। जार्गेनसन का मुख्य दावा था कि कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन काफी तेज नहीं होते हैं, तो कृषि कभी भी न तो खाद्य अधिशेष उत्पादन कर सकती है, और न ही उद्योग के लिए अपने ''अधिशेष श्रमिक'' छोड़ सकती है। इसलिए शूल्त्ज–जार्गेनसन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत में यह संदेश निहित है कि कृषि और उद्योग की साथ-साथ वृद्धि आपस में संपूरक तरीके में दोनों सेक्टरों की ''टिकाऊ वृद्धि'' के लिए और ''अधिशेष श्रम'' का सफल हस्तांतरण के लिए भी आवश्यक है। इस प्रकार शूल्त्ज–जार्गेनसन का तर्क लुईस द्वारा इंगित और फाई और रेनिस द्वारा प्रस्तुत श्रम स्थानांतरण की संभावना फलीभूत करने में महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अब हम ''संतुलित संवृद्धि दृष्टिकोण'' पर विचार करेंगे जिसमें कृषि और उद्योग दोनों के विकास रणनीति को ध्यान में रखा गया है।

1.2.4 पहले कृषि बनाम संतुलित वृद्धि दृष्टिकोण

बहुत से सिद्धांतकार के अनुसार एक महत्त्वपूर्ण समस्या अर्थव्यवस्था में मांग को उत्प्रेरित करने से संबंधित है। यह सत्य है कि आर्थिक रूपांतरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है जो अपनी आजीविका के लिए मुख्यतया कृषि पर निर्भर होता है। वे गरीब और कम लिखे पढ़े हैं और उनके लिए कृषि केंद्रित व्यवसायी के कार्यों से ही अपनी आय बढ़ाना महत्त्वपूर्ण है। यह नहीं होने पर औद्योगिक सेक्टर के उत्पादों के लिए मांग भी कम रहेगी। इस परिस्थिति से निपटने के लिए रोजेनस्टीन रोड (1943) ने ''बिग पुश'' या प्रबल चेष्टा नाम का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न सेक्टरों में 'उत्पादन' रोजगार और उपभोग का समन्वित विस्तार है।

'बिग पुश' ने विकास के लिए आर्थिक बाधाओं से निपटने के लिए अपेक्षित निवेश की कुछ न्यूनतम उच्च मात्रा को महत्त्व दिया। ऐसी स्थिति का अभिप्राय आपस में संपूरक तरीके में कृषि और गैर-कृषि दोनों सेक्टरों में अंतःसंबद्ध आर्थिक गतिविधियों की विशाल पटल पर ''संतुलित संवृद्धि'' आसान बनाना है। यह दृष्टिकोण एक ओर गरीबी (जो मुख्यतया ग्रामीण गरीबों में प्रभावशाली मांग के अभाव के कारण है) के दुश्चक्र की गंभीर समस्या के समाधान में सहायक होगा, तथा दूसरी ओर ''अर्थव्यवस्था के सामाजिक-आर्थिक आधार'' को विस्तृत बनाने में भी सहायक होगा। कृषि और गैर-कृषि दोनों सेक्टरों में ऐसा निवेश बहुमुखी लाभ सुनिश्चित करेगाः i) ग्रामीण आय बढ़ाना, इससे औद्योगिक और गैर-कृषि माल की मांग में वृद्धि होगी; ii) विशाल ग्रामीण जनसंख्या की रुचियों और आय के स्तरों के अनुकूल माल की आपूर्ति बढ़ाना; और iii) विदेशी व्यापार आदि द्वारा औद्योगिक पूँजी का प्रवेश करने के लिए कृषि की क्षमता सुधारना। इसलिए अधिशेष के वास्तविक प्रदाता के रूप में कृषि की भूमिका और वास्तविक मांग प्रदान करने में भी उसकी भूमिका के बीच संघर्ष का समाधान करना ही नीतिगत चुनौती है। वस्तुतः ये सारे तर्क कृषि विकास को प्राथमिकता देने उसके शेष अर्थव्यवस्था से अंतर्संबंधों को बल प्रदान करने का आग्रह करते हैं।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए

1) परिसंचरण की अवधारणा क्या है।

.....

.....

.....

.....

2) फिजियोक्रेट्स के (प्रकृतितंत्रवादी) कौन थे ? आर्थिक संवृद्धि पर उनके विचार संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

3) लुईस, फेई रेनिस तथा शूल्ज–जार्गेनसन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों में आप को क्या तत्त्व सांझे लगते हैं। लुईस द्वारा निर्दिष्ट'' अधिशेष श्रम'' का लाभ प्राप्त करने के लिए शूल्ज – जार्गेनसन के अनुसार महत्त्वपूर्ण क्या है ?

.....

.....

.....

.....

1.3 कृषि विकास के निर्धारक तत्त्व

कृषि विकास को प्रभावित करने वाले कारक अनेक हैं। उनमें भौतिक, प्रौद्योकीय, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक, संस्थागत, संगठनात्मक, राजनीतिक कारक शामिल हैं। ये सभी कारक भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्य करते हैं, जैसे : परिवार, गांव, जिला, राज्य, राष्ट्र और समग्र रूप में विश्व। इनकी नियंत्रण विधि के आधार पर विकास पर इन कारकों का अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि देश के मानव संसाधन उचित पोषण, स्वास्थ्य देख-भाल, शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा समुचित ढंग से विकसित नहीं किए जाते हैं, तो उन्हें उत्पादकता की दृष्टि से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। ऐसे संसाधन विकास के लिए बोझ और बाधा बन जाते हैं। परन्तु, यदि उन्हें समुचित ढंग से विकसित किया जाता है और उपयोग में लाया जाता है, तो, वे विकास के लिए बड़ी परिसंपत्तियां और प्रमुख सहयोगी कारक होते हैं। कृषि विकास पर विभिन्न निर्धारक तत्त्वों के प्रभाव के स्वरूप और परिणाम के बारे में ज्ञान, दक्षता और प्रभाविकता से आगे बढ़ना आवश्यक है।

विशेष रूप से अच्छी ''ग्रामीण आधारभूत संरचना'' को कृषि उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें विभिन्न कारक, जैसे सड़कें, सिचाई, बिजली आपूर्ति, बैंकिग, संचार आदि शामिल हैं। कृषि आधारभूत संरचना का अधिक विशिष्ट स्वरूप ''सामाजिक आध

ाारभूत, संरचना'' है, जिसमें, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं, विस्तार सेवाएं और सूचना प्रसारण प्रणालियाँ सहयोगशील क्रियाविधियाँ, कृषि अनुसंधान और प्रौद्योगिकी (RRT) आदि जैसे कारक आते हैं। कृषि विकास की प्रगति को प्रभावित करने वाली ग्रामीण आधारभूत संरचना की मुख्य कमियों में बचत जुटाने और ऋण देने के लिए वित्तीय संस्थाओं की अपर्याप्तता है। सार्वजनिक निवेश की भूमिका एवं अन्य मान्य कारक है जो कृषि विकास को काफी अधिक प्रभावित करता है।

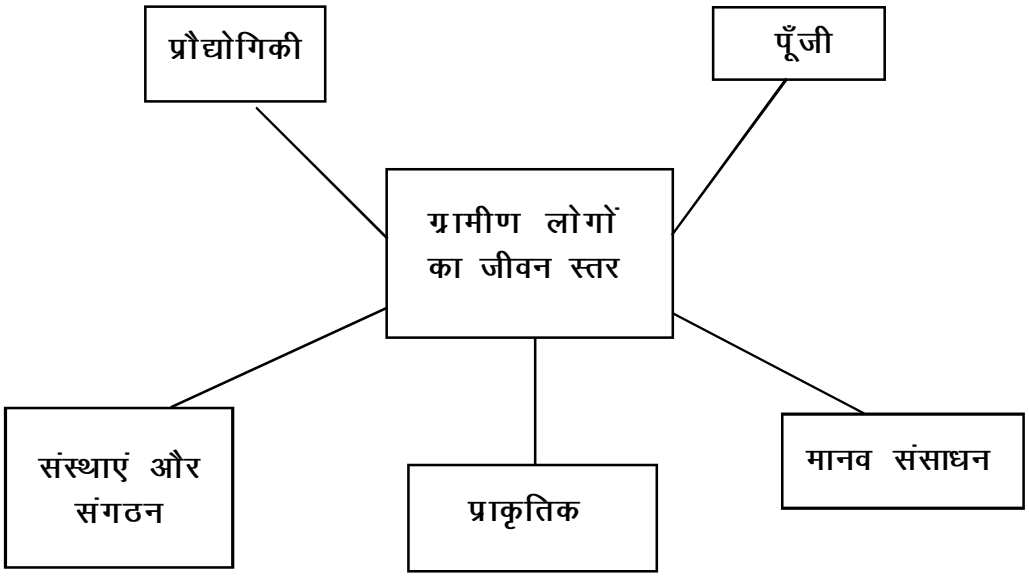

चित्र 1.1 : कृषि विकास के निर्धारण तत्त्व

शीत भंडारण, विपणन, बिक्री केंद्र आदि सुविधाएँ सुलभ कराने के लिए कृषि में सार्वजनिक निवेश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, (जहाँ कृषक समुदाय का बहुत बड़ा भाग ''छोटे और सीमांत श्रेणी'' के विकास होते हैं, जिनकी आय और जीवन निर्वाह स्तर गरीबी स्तर की सीमा पर होती है।) यह भारत के संपर्क में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की अवधि में मान्य सत्य है कि सकल पूँजी निर्माण के अनुपात के रूप में सार्वजनिक निवेश के अनुपात में अत्यधिक गिरावट आई है। पूँजीनिरुद्ध देशों में निवेश आकर्षित करने के लिए (सार्वजनिक निजी भागीदारी (PPP) को ऐसी आधारभूत संरचना सुविधाएं सुधारने के लिए विकल्प समझा गया है जो कृषि विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

1.4 कृषि विकास नीतियाँ

मोटेतौर पर ''नीति'' को विकल्पों के समूह में से चुनी हुई निश्चित कार्रवाई के रूप में परिभाषित किया गया है। अधिक सामान्य दृष्टि में ''नीति प्रक्रिया'' का संबंध विशिष्ट रूप से परिभाषित कार्य योजना का निरूपण, प्रख्यापन और अनुप्रयोग से है। यहां हम सार्वजनिक कृषि विकास नीतियों से संबद्ध रहेंगे, जिसका अभिप्राय कृषि संवर्धन के निश्चित उद्देश्यों के अनुसरण में सरकार द्वारा की गई कार्रवाई है।

इस संदर्भ में (क) नीति; (ख) कार्यक्रम; और (ग) परियोजना के बीच अंतर करना महत्त्वपूर्ण है। नीति एक व्यापक शब्द है जिसमें बहुत से कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार कार्यक्रम में बहुत परियोजनाए होती हैं। नीति कार्यान्वयन से पहले कई कार्यक्रमों को

निर्धारित किया जाता है। कार्यक्रम ही निर्दिष्ट करते हैं कि क्या, कैसे, जिसके द्वारा और कहां किया जाना है। परियोजना भी उद्देश्यों, अवस्थिति, अवधि, फंड, निष्पादनकारी एजेंसी आदि के अनुसार अधिक सुस्पष्ट और ब्योरेवार होती है। इस प्रकार परियोजना नीति कार्रवाई की अंतिम ''इकाई'' के रूप में आती है। कार्यक्रम में कई परियोजनाएं हो सकती हैं। इसलिए कृषि विकास परियोजना को ऐसे निवेश कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहां संसाधनों को कतिपय पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निश्चित समयावधि में लगाया जाता है।

1.4.1 कृषि विकास नीति के लक्ष्य

कृषि विकास नीतियाँ उन दशाओं को सुधारने के लिए तैयार की जाती हैं जिनमें ग्रामीण लोग कार्य करते हैं और रहते हैं। नीतियों के लक्ष्य लोगों की इच्छा द्वारा नियंत्रित होते हैं। ''नीति उपाय'' इस बात को महत्त्व देता है कि लोग क्या सोचते हैं, सरकार क्या कर सकती है और वांछित परिवर्तन लाने के लिए क्या करना चाहिए, यह सार्वजनिक नीति का सिद्धांत है। परिवर्तन केवल तभी वांछित होते हैं, जब लोग जिस तरीके में काम हो रहा है, उसे पसंद नहीं करते सार्वजनिक कार्रवाई के लिए दबाव तब उत्पन्न होते हैं जब लोग अनुभव करते हैं कि वे व्यक्तिशः रूप से वांछित परिवर्तन नहीं ला सकते। उनके मन में आदर्श स्थिति के कुछ मानदंड या कुछ छवि होती है, जिसकी वे आकांक्षा करते हैं। ये मानदंड नीति के लक्ष्य हो जाते हैं जिनकी ओर सुस्पष्ट कार्यक्रमों के उद्देश्यों को दिग्वर्तित किया जाता है।

भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित ''राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में आर्थिक नीति के दो प्रबल लक्ष्यों को देखना संभव है : i) राष्ट्रीय आय बढ़ाना और ii) समाज के सदस्यों में राष्ट्रीय आय के वितरण में सुधार करना। इसलिए ये लक्ष्य उन सभी आर्थिक नीतियों में परिलक्षित किए जाते हैं जो पंचवर्षीय योजनाओं में निर्दिष्ट होते हैं। जो लक्ष्य ''समावेशी वृद्धि'' प्राप्त करने का प्रयास करता है उसे राजनीति के चार महत्त्वपूर्ण आयामों के संदर्भ में देखा जाना आवश्यक है : i) नागरिकों के ''जीवन स्तर'' का सुधार, ii) ''उत्पादनकारी रोजगार'' अवसर पैदा करना; iii) संतुलित क्षेत्रीय विकास की स्थापना; और iv) आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

अधिकांश कृषि विकास नीतियां भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के मिश्रण हैं जिनके क्रियान्वयन में भिन्न-भिन्न उपायों की आवश्यकता होती है। कई कार्यक्रमों या परियोजनाओं में विभाजित सरकारी एजेंसी विशेष को उसके क्रियान्वयन के लिए पदनामित किया जाता है। ये एजेंसियां अपनी निगरानी और नियंत्रण के अधीन स्वयंसेवी और निजी एजेंसियों को क्रियान्वित करने के लिए विशिष्ट परियोजनाएं सौंप सकती हैं। संसाधनों की छीजन और अदक्ष प्रयोग रोकने के लिए उनहें विभिन्न शर्तों द्वारा सीमित किया जाता है। इस प्रकार ये शर्तें निर्णायक कारक होती हैं जो मिलकर परियोजनाओं/कार्यक्रमों का दक्ष क्रियान्वयन निश्चित करते हैं।

1.4.2 कृषि विकास नीतियों का वर्गीकरण

टिनबेर्जेन गुणात्मक नीति और परिमाणात्मक नीति के बीच अंतर करता है। गुणात्मक नीति नए संस्थानों के निर्माण, विद्यमान संस्थाओं का संशोधन और प्राइवेट फर्मों के संवर्धन द्वारा आर्थिक संरचना को परिवर्तन करने का प्रयास करती है। परिमाणात्मक नीति कुछ प्राचलों के आकार (जैसे कर-दर में परिवर्तन) बदलने का प्रयास करती हैं। एक उदाहरण, जो गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों का निरूपण करता है, निःशुल्क शिक्षा प्रणाली प्रारंभ करने की नीति है, यह गुणात्मक भी है, क्योंकि, यह आर्थिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है; और परिमाणात्मक है, क्योंकि, यह सेवा के लिए ली गई फीस से परिवर्तन दर्शाता है।

हेडी कृषि नीतियों को (i) विकास नीतियों और (ii) प्रतिपूर्ति नीतियों में वर्गीकृत करता है। विकास नीति (i) पण्य वस्तुओं और संसाधनों की आपूर्ति बढ़ाने और (ii) उत्पादों और निवेश में सुधार करने का प्रयास करती है। प्रतिपूर्ति नीति का उद्देश्य उपने लक्ष्य समूहों को विभिन्न तरीकों से प्रतिपूर्ति करना है।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) कृषि विकास के मुख्य निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

.....

2) नीति में परियोजनाएं सम्मिलित होती हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

.....

.....

.....

.....

3) प्रत्येक का उदाहरण देते हुए विकास नीति और प्रतिपूर्ति नीति में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

1.5 कृषि विकास : औद्योगिकीकरण का प्रस्तावना

साधारणतया लुईस द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत आर्थिक रूपांतरण की प्रक्रिया सभी अर्थव्यवस्थाओं, अर्थात् विकसित और विकासशील दोनों के लिए लागू होती है। परन्तु किसी देश के रूपांतरण की गति प्रत्यक्ष रूप से उस गति से भिन्न है जिस पर देश द्वारा आवश्यक संस्थागत क्रिया-विधियाँ संस्थापित की गई हैं। ऐसे रूपांतरण से कृषि पर आश्रित श्रमिक बल के अनुपात में गिरावट आएगी और गैर-कृषि सेक्टर (अर्थात् उद्योग और सेवाओं) उसमें बढ़ोतरी होगी। तालिका 1.1 भारत और विकसित अर्थव्यवस्थाओं का रोजगार और आय (अर्थात् राष्ट्रीय आय) में अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य सेक्टरों के सापेक्ष अंश की तुलनात्मक जानकारी दी गई है। यद्यपि भारत में कृषि सेक्टर में कामगारों का अनुपात अब लगभग 52 प्रतिशत है, विकसित देशों में यह केवल 1 से 5 प्रतिशत की सीमा में है। भारत का औद्योगिक रोजगार का अंश, (कुल रोजगार में) अब लगभग 14 प्रतिशत है, किंतु ये विकसित अर्थव्यवस्थाओं के अंश का लगभग आधा है। इसके अलावा भारत में 1950–2010 की छह दशाब्दियों की अवधि में औद्योगिक रोजगार का स्तर केवल लगभग 4 से 5 प्रतिशत बिंदु तक बढ़ा है (यह 1950 के दशक के दौरान लगभग 9–10 प्रतिशत था। जो छह दशकों की लंबी अवधि के दौरान भारत

की औद्योगिकीकरण की काफी कम उपलब्धि दर्शाता है। इसके बावजूद कृषि रोजगार के शेयर में गिरावट (इस अवधि में) कम नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यह 72 प्रतिशत था जो 2002 के बाद के वर्षों में 52 प्रतिशत हो गया। यद्यपि यह गिरावट श्रम स्थानांतरण की इस कल्पना को बल देता है कि श्रमिक कृषि से गैर-कृषि (अर्थात् उद्योग + सेवा) में स्थानांतरित हुई है, जैसा कि लुईस द्वारा प्रस्तुत किया गया है, फिर भी विकसित अर्थव्यवस्था का स्तर प्राप्त करने के लिए भारत को अभी ठोस तरीके से आगे बढ़ना है।

तालिका 1.1: भारत और विकसित अर्थव्यवस्थाओं में रोजगार और आय में संरचनात्मक संयोजन

प्रतिशत

प्रमुख आर्थिक सेक्टर	विकसित अर्थव्यवस्था 2000 के बाद		भारत (2009–10)	
	आय	रोजगार	आय	रोजगार
कृषि	1–4	1–5	14.6	52
उद्योग	22–30	21–33	28.6	14
सेवाएं	68–73	63–74	57.2	34

परन्तु तीन व्यापक आर्थिक सेक्टरों द्वारा आय के वितरण के आधार पर उद्योगों और सेवाओं दोनों के संबंध में भारत विकसित अर्थव्यवस्था स्तर के समीप है। प्रवृत्ति से प्रतीत होता है कि ग्रामीण औद्योगिकीकरण कार्यक्रम की अधिक सुदृढ़ नीति पर फोकस करने की आवश्यकता है। आप हमारे ग्रामीण औद्योगिकीकरण और उनकी उपलब्धि के बारे में इस पाठ्यक्रम की इकाई 10 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे। इसी बीच हमें यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि किस तरीके से महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। हम अब इसी पर विचार करेंगे।

1.5.1 आर्थिक वृद्धि के लिए कृषि का योगदान

कुजनेट्स ने समग्र आर्थिक विकास में चार संभव योगदानों की पहचान की है जिन्हें करने की क्षमता कृषि सेक्टर में होती है। ये हैं :

- उत्पाद योगदान – खाद्य और कच्चा माल उपलब्ध करना;
- बाजार योगदान – गैर-कृषि क्षेत्र के उत्पादकों और उपभोक्ता माल के लिए बाजार मुहैया करना;
- कारक योगदान – गैर-कृषि सेक्टर के श्रम और पूँजी उपलब्ध करना; और
- व्यापार में योगदान और विदेशी मुद्रा अर्जित करना (अर्थात् पूँजी अंतर्वाह)।

कृषि सेक्टर के उपयुक्त योगदानों पर निम्न प्रकार से आगे अधिक विस्तार से चर्चा हो सकती है।

i) बुनियादी निर्वाह सामग्री अर्थात् खाद्यवस्तुओं की आपूर्ति का स्रोत।

खाद्य की कमी अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न करती है जो आर्थिक विकास के लिए दबाव के रूप में कार्य करता है। पर्याप्त घरेलू आपूर्ति के अभाव में निर्यात के लिए कोई अधिशेष नहीं रहता।

ii) खाद्य अभाव और सामान्य कीमत स्तर

विकासशील देशों में खाद्य मांग में तीव्र वृद्धि का एक मुख्य कारण जनसंख्या की वृद्धि है। इन देशों में, जनसंख्या वृद्धि लगभग 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। साथ ही, प्रति व्यक्ति आय में लगभग 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि होने से खाद्य की मांग की आय लोच के कारण भी बढ़ रही है। मांग की आय लोच को हम Y_{ED} द्वारा दिखा रहे हैं। अनुमान है कि खाद्य के लिए Y_{ED} विकसित देशों की 0.2 से 0.3 की तुलना में अधिकांश विकासशील में लगभग 0.5 से 0.6 है। इन दशाओं अधीन खाद्य मांग की वृद्धि की दर समीकरण $D = P + (Y_{ED}) Y$ द्वारा दी गई है, जहां D खाद्य मांग की वृद्धि दर है, P जनसंख्या वृद्धि दर है और Y प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि की दर है। उपर्युक्त समीकरण में इन आंकड़ों को प्रतिस्थापित करने पर ''प्रारूपित (टिपिकल)'' विकासशील देश में मोटे अनुमान के रूप में हम पाते हैं : $D = 2.5 + 0.5 (3.4)$ या 4.2 प्रतिशत। यदि घरेलू खाद्य उत्पादन लगभग इस दर से नहीं बढ़ रहा है, तो खाद्य की कमी इन वस्तुओं की कीमतें ऊपर की ओर बढ़ाएगी। खाद्य वस्तुएं बुनियादी निर्वाह सामग्री होने के कारण इनकी कीमतों में वृद्धि औद्योगिक सेक्टर में उच्चतर मजदूरी की मांग उठाती है। उद्योग में उच्चतर मजदूरी से वहां उत्पादन लागत बढ़ती है, (विशेष कर उन उद्योगों में जिनमें मजदूरी बिल उत्पादन की कुल लागत का महत्त्वपूर्ण घटक है)। इसके परिणामस्वरूप बड़ा समष्टि आर्थिक व्यावधान उत्पन्न कर सकता है, जो किसी भी देश की आर्थिक स्थिति के लिए गंभीर चिंता का विषय है।

iii) खाद्य अभाव और भुगतान संतुलन (BOP)

यद्यपि आयात द्वारा खाद्यान्न की किसी भी घरेलू कमी को पूरा करना संभव है परन्तु इससे भुगतान संतुलन (BOP) की समस्या उत्पन्न हो सकती है। प्रतिस्वरूप देश को खाद्यान्न के आयात के कारण पूँजीगत माल जैसे मशीनरी, तकनीकी जानकारी आदि का अधिक आवश्यक आयात छोड़ना आवश्यक हो सकता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था की संवृद्धि संभावना को ठेस पहुँच सकती है।

iv) खाद्य अभाव और मानवपूँजी निर्माण

अभी हाल ही तक अर्थशास्त्रियों में खाद्य को केवल एक उपभोग सामग्री के मानने की प्रवृत्ति थी। परन्तु अब यह माना गया है कि खाद्य उपयोग के एक भाग को निवेश के रूप में समझा जाना चाहिए, क्योंकि यह श्रमिक बल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक है। इसके अभाव में कुपोषण के परिणाम संभावित मानव पूँजी को प्रभावित कर सकते हैं। इससे कामगारों की अनुपस्थिति और उत्पादकता में गिरावट भी हो सकती है। वैसे भी विकासशील देशों में खाद्य उपभोग न केवल कैलेरीज में है बल्कि प्रोटीन में भी त्रुटिपूर्ण है। यह विकासशील देशों में श्रमिक बल अपेक्षाकृत कम उत्पादनकारी होने के कई कारणों में एक है।

v) उद्योग के लिए निवेश

कृषि आधारित उद्योगों के लिए अपेक्षित कच्चा माल प्रायः कृषि सेक्टर से ही प्राप्त किया जाता है। सभी प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद उद्योगों के लिए कृषि सेक्टर से कच्चा माल, जैसे कपास, जूट, गन्ना आदि की पर्याप्त आपूर्ति प्राप्त करना संभव नहीं हुआ है। इसके अलावा, जैसा कि हम अब भलीभांति जानते हैं, (औद्योगिकीकरण में वृद्धि के फलस्वरूप) इस संक्रातिकाल के वर्षों में कृषि सेक्टर से अतिरिक्त श्रमिकों को निकाल कर श्रमिकों के लिए बढ़ती हुई मांग पूरी करना आवश्यक है। जैसे-जैसे अधिकाधिक कामगार कृषि से छोड़े जाते

हैं, वैसे-वैसे कृषि में शेष कामगारों के लिए खाद्य आपूर्तियों को बनाए रखने के लिए अपनी उत्पादिता बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार उद्योग और कृषि दोनों के लिए आदान वृद्धि के प्रभाव परस्पर संवर्धक हो जाएंगे। कृषि उत्पाद बढ़ाने के लिए अनुसंधान और निवास (R&D) प्रयासों का किया जाना आदि आवश्यक होगा।

vi) विदेशी मुद्रा का स्रोत

अपनी शैशव अवस्था में उद्योग बहुत कम विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं परन्तु स्थानीय रूप से अनुपलब्ध मशीनरी, प्रौद्योगिकी और निवेश के लिए अपनी आवश्यकता के अनुसार इसकी बहुत अधिक मांग करते हैं। यदि कृषि निर्यात विदेशी मुद्रा प्रदान नहीं करता है, देश को भुगतान संतुलन के दबाव का सामना करना पड़ेगा, जिससे देश की औद्योगिक प्रगति बाधित हो सकती है।

vii) पूँजी निर्माण का स्रोत

सुविकसित कृषि गैर-कृषि क्षेत्र में पूँजी निर्माण में वास्तविक योगदान कर सकती है। इस मत के समर्थन में तीन तर्क हैं : i) कृषि में पूँजी-उत्पाद अनुपात उद्योग की तुलना में अपेक्षाकृत कम है, इसलिए कृषि में उत्पादकता बढ़ाने की बहुत संभावना है जिसके लिए बहुत सामान्य सी पूँजी की आवश्यकता होगी। ii) व्यापार की शर्तों के कृषि क्षेत्र के पक्ष में होने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। इससे कृषि आय में अपेक्षकृत तीव्र वृद्धि हो सकती है; (iii) कृषि समुदाय परम्परागत रूप में कम उपभोग के आदि हैं। इसमें विकास के फलस्वरूप कृषि आय की संभावित वृद्धि के अनुरूप वृद्धि की संभावना भी नहीं होती।

viii) औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार

औद्योगिक माल की मांग पर कृषि विकास कर प्रभाव दोनों दिशाओं में कार्य करता है : i) बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन और बढ़ती हुई आय औद्योगिक माल की मांग को प्रोत्साहित करती है : और ii) कृषि और औद्योगिक सेक्टरों के बीच व्यापार की शर्तें औद्योगिक माल को अधिक मंहगा बना कर कृषि के पक्ष में मोड़ सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापार की शर्तों के प्रभाव निम्न और उच्च आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं। यद्यपि निम्न आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए निर्वाह वस्तु और औद्योगिक माल दोनों के लिए मांग लोचहीन होगी और उच्च आयवर्ग के व्यक्तियों के लिए कृषि मूल्य बढ़ने से प्राप्त अधिक आय के कारण मांग पर भी भिन्न प्रभाव होगा। इस प्रकार कृषि निष्पादन उत्पादन प्रभाव और व्यापार की शर्तों के प्रभाव से औद्योगिक माल की मांग प्रभावित हो सकती है। वास्तव में यह उन आवश्यक शर्तों में से एक है जिससे अर्थव्यवस्था अपनी आत्मनिर्भर संवृद्धि की प्रक्रिया के लिए तैयार होती है। उससे पहले ही इसे पूरा किया जाना चाहिए।

1.5.2 उद्योग पर कृषि की निर्भरता

उपर्युक्त समीक्षा में कृषि विकासनीतियों और कार्यक्रमों को औद्योगिक विकास की नीतियों और कार्यक्रमों से सामंजस्य स्थापित करने के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। इस पर पुनः बल देने के लिए हम भिन्न तरीकों की सूची बना सकते हैं जिनमें कृषि की प्रगति के लिए उद्योग योगदान करता है।

– उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों और यहां तक कि जल सहित अधिक आधुनिक आदान उद्योगों द्वारा उपलब्ध किए जाते हैं।

- उद्योग फार्मों पर अपेक्षित मशीनरी सलाई करता है।
- कृषि इंजीनियरी उद्योग की महत्त्वपूर्ण शाखा है।
- अधिकांश अनुसंधान, जो भारत में ''हरित क्रांति'' पूरा करने कि लिए किये गये थे, वह ऐसे आरंभ किये गये कि औद्योगिक संस्कृति के रूप में उन पर वर्णन किया जा सकता है।
- उद्योग कृषि की प्रगति के लिए अपेक्षित आवश्यक आधारभूत संरचना तैयार करने में सहायता करता है। यह परिवहन, और संचार, व्यापार और वाणिज्य, बैंकिंग और विपणन की सुविधाओं आदि के रूप में हो सकता है।
- उद्योग बढ़ती हुई जनसंख्या और कृषि सेक्टर में आय वृद्धि के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में उपभोक्ता माल के लिए बढ़ती हुई मांग पूरा करने में सहायता करता है।

संक्षेप में, आर्थिक विकास और संरचनात्मक रूपांतरण के दौरान कृषि और उद्योग के बीच पारस्परिक संपूरक स्वरूप का समर्थन करना युक्ति संगत है। संसाधनों, उत्पादों और कारकों की अंतःक्षेत्रीय मांग और पूर्ति का सापेक्षित बल न केवल विकास की गति निश्चित करता है बल्कि वृद्धि की अवस्था की अभिव्यक्ति भी करता है। परन्तु सेक्टरों के बीच ऐसे संबंध भी हैं कि धारणीय विकास के लिए कृषि उत्पादकता में वृद्धि पहले होनी चाहिए और बाद की अवस्थाओं में गैर-कृषि सेक्टरों का विकास सतत् बनाए रखा जाना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) किस संबंध में भारत की प्रगति विकसित अर्थव्यवस्थाओं के समीप है? क्षेत्रानुसार आय अंश के वितरण का प्रयोग करते हुए उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) देश के कृषि सेक्टर के समग्र आर्थिक विकास में कुजनेट्स द्वारा निर्धारित योगदान के चार प्रकार क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

3) खाद्य अभाव मानव संसाधन निर्माण पर कैसे प्रभाव डालता है ?

.....

.....

.....

.....

4) बढ़ता हुआ कृषि विकास को कृषि और उद्योग दोनों की वृद्धि स्थायी रखने के लिए अतिरिक्त R&D प्रयासों की आवश्यकता होगी, क्यों ?

.....

.....

.....

.....

1.6 सारांश

यह इकाई उन मुख्य सिद्धांतों की समीक्षा से आरंभ की गई है, जिनमें आग्रह है कि समग्र आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास एक आवश्यक शर्त है। हमने देखा कि मानव संसाधन विकास पर (सामाजिक सेक्टर निवेश के तरीके से जैसे, शिक्षा स्वास्थ्य, आधारभूत संरचना आदि पर) पर्याप्त ध्यान देना अर्थव्यवस्था के चहुंमुखी विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतया क्षेत्रीय विकास के लिए, और विशेष रूप से कृषि विकास के लिए, निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्य प्राप्त करने में नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं का महत्त्व भी नोट किया गया। हमने देखा कि (i) भारत विकास की मध्यवर्ती अवस्था में है जिसमें लुईस आदि द्वारा अभिग्रहीत क्षेत्रीय श्रमिक स्थानांतरण की प्रक्रिया कार्य कर रही है, और (ii) 4 प्रतिशत वार्षिक दर से कृषि उत्पादन की वृद्धि देश की धारणीय समन्वित आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। इकाई के अंत में हमने जाना है कि इस प्रकार की विकास नीति की सफलता के लिए कृषि और उद्योग में समन्वय अत्यावश्यक है।

1.7 शब्दावली

संतुलित संवृद्धि दृष्टिकोण : वह दृष्टिकोण, जिसमें कृषि और उद्योग दोनों सेक्टरों पर विकास के लिए समान रूप से फोकस किया जाता है।

द्वि-क्षेत्रक आर्थिक प्रतिमान : ऐसा प्रतिमान, जिसमें अर्थ व्यावस्था को द्वि-खंडीय माना जाता है : (i) श्रमिक बल का भार वहन करने वाला अल्प उत्पादिता कृषि क्षेत्र, जिसकी सीमांत उत्पादिता बहुत कम है, और (ii) अधिक उत्पादनकारी गैर-कृषि क्षेत्र (अर्थात् उद्योग + सेवाएं) जिनकी वृद्धि और धारणीयता सफल कृषि सेक्टर पर निर्भर है। इस आधार पर निर्मित प्रतिमान इष्टतम विकास लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक नीति दृष्टिकोण को स्पष्टता प्रदान करते हैं।

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Ashok Gulati and Tim Kelley (2003): *Trade Liberalisation and Indian Agriculture*, Oxford, New Delhi.

2) G.S. Bhalla (2007): *Indian Agriculture Since Independence*, NBT, New Delhi.

3) Kartar Singh (2009): *Rural Development: Principles, Policies and Management*, Sage, 3rd Edition.

4) Ranis, Gustav (2004): *Arthur Lewis's Contribution to Development Thinking and Policy*, The Manchester School, Volume 72, No. 6, December, pp 712-723.

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) ''प्रौद्योगिकी, निदेश और लाभ'' के बीच अंतःसंबद्धता देखिए।

   भाग 1.2 देखिए

2) भाग 1.2 देखिए और उत्तर दीजिए

3) उपभाग 1.2.1 से 1.2.3 तक देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) भौतिक/तकनीकी/आर्थिक/.... आदि ii) ग्रामीण/सामाजिक आधारभूत संरचना iii) ऋण और iv) सार्वजनिक निवेश

2) भाग 1.4 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 1.4.2 देखिए और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) उपभाग 1.5.1 देखिए तालिका 1.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

2) उपभाग 1.5.1 देखिए और उत्तर दीजिए।

3) उपभाग 1.5.1 (iv) देखिए और उत्तर दीजिए।

4) उपभाग 1.5.1 (v) देखिए और उत्तर दीजिए।